IMPACT FACTOR 5.397 (SJIF USA)
बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 4, Issue 1, January-March, 2026
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971

हिंदी कथा साहित्य में मध्यवर्गीय स्त्री : एक आलोचनात्मक अध्ययन

प्रियंका श्रीवास्तव
जलपाईगुड़ी, पश्चिम बंगाल

शोध सार : हिंदी कथा साहित्य भारतीय समाज की अंतःसंरचना को समझने का सशक्त माध्यम रहा है। इसमें स्त्री की उपस्थिति केवल कथानक को आगे बढ़ाने वाले पात्र के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक सत्ता-संबंधों, नैतिक मूल्यों और ऐतिहासिक अंतर्विरोधों की संवाहक शक्ति के रूप में दिखाई देती है। विशेष रूप से मध्यवर्गीय स्त्री हिंदी कथा साहित्य में उस सामाजिक वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, जो परंपरा और आधुनिकता के संधिकाल में निरंतर तनाव और द्वंद्व का अनुभव करता है।

मध्यवर्गीय जीवन में आर्थिक सीमाएँ, सामाजिक प्रतिष्ठा की चिंता, नैतिक अनुशासन और सांस्कृतिक अपेक्षाएँ स्त्री की चेतना को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं। परिणामस्वरूप, हिंदी कथा साहित्य में मध्यवर्गीय स्त्री की छवि केवल घरेलू भूमिकाओं तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह मानसिक संघर्ष, आत्मबोध और प्रतिरोध की प्रक्रिया से भी गुजरती है। इस शोध आलेख का उद्देश्य हिंदी कथा साहित्य में मध्यवर्गीय स्त्री की छवि के विकास, उसकी समस्याओं और प्रतिरोधी चेतना का ऐतिहासिक एवं वैचारिक विश्लेषण प्रस्तुत करना है।

बीज शब्द : स्त्री चेतना, सामाजिक संरचना, परंपरा और आधुनिकता, मानसिक संघर्ष, आत्मबोध, प्रतिरोधी चेतना, सामाजिक मूल्य, सत्ता-संबंध

मध्यवर्ग की अवधारणा और स्त्री-अनुभव –

मध्यवर्ग सामाजिक संरचना का वह स्तर है जो न तो संपन्न वर्ग की सुविधाओं से पूर्णतः युक्त होता है और न ही वंचित वर्ग की प्रत्यक्ष अभावग्रस्तता से। इस वर्ग की स्त्री आर्थिक सुरक्षा के बावजूद सामाजिक और भावनात्मक अस्थिरता से घिरी रहती है। परिवार की मर्यादा, सामाजिक स्वीकृति, विवाह संस्था, मातृत्व और कार्यक्षेत्र — ये सभी तत्व उसके जीवन को नियंत्रित करते हैं। रामविलास शर्मा लिखते हैं – "मध्यवर्ग की सबसे बड़ी विशेषता उसका नैतिक द्वंद्व है, जो सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक यथार्थ के बीच लगातार बना रहता है।" (शर्मा 112) यह द्वंद्व हिंदी कथा साहित्य में स्त्री के माध्यम से अधिक तीव्र रूप में प्रकट होता है।

हिंदी कथा साहित्य में प्रारंभिक दौर में मध्यवर्गीय स्त्री को सहनशीलता, त्याग और कर्तव्यबोध की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। किंतु जैसे-जैसे सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन होता है, वैसे-वैसे साहित्य में यह स्त्री प्रश्नाकुल और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में उभरती है। यह परिवर्तन स्त्री चेतना के विकास और पितृसत्तात्मक मूल्यों के प्रति असहमति का संकेत है।

प्रेमचंद युग : यथार्थ का मौन प्रतिरोध –

प्रेमचंद के कथा साहित्य में मध्यवर्गीय स्त्री सामाजिक यथार्थ की केंद्रीय धुरी के रूप में उपस्थित होती है। उनकी स्त्रियाँ घरेलू दायित्वों, आर्थिक निर्भरता और सामाजिक रूढ़ियों के बीच संघर्ष करती हुई दिखाई देती हैं। 'निर्मला' उपन्यास की नायिका दहेज, असमान विवाह और पारिवारिक संदेह की शिकार बनती है। प्रेमचंद स्त्री पीड़ा को सामाजिक संरचना से जोड़ते हैं। निर्मला के संदर्भ में लिखते हैं – "निर्मला समझ गई कि उसके जीवन की सारी दुर्घटनाएँ दहेज की देन हैं।" (प्रेमचंद 87) यहाँ स्त्री की पीड़ा व्यक्तिगत न होकर सामाजिक संरचना की देन प्रतीत होती है। दहेज सामाजिक संस्था है। इसने समाज की एक विशेष संरचना तैयार कर रखी है। गैरजरूरी और अमानवीय होकर भी आज हमारे समाज में दहेज बदस्तूर जारी है। इस दिशा में निर्मला द्वारा सारी दुर्बलताओं के केंद्र में दहेज को प्रश्नांकित किया जाना वास्तव में सामाजिक संरचना के विरुद्ध खड़ा किया गया बेहद जरूरी प्रतिरोध ही है। भले ही निर्मला कथित तौर पर प्रत्यक्षतः प्रतिरोध खड़ा नहीं कर पाती, लेकिन निर्मला के माध्यम से प्रेमचंद ने ऐसे प्रतिरोध की जरूरत महसूस कराई है।

इसी प्रकार 'सेवासदन' की सुमन स्त्री की नैतिकता और समाज की दोहरी मूल्य-प्रणाली को उजागर करती है।

नामवर सिंह प्रेमचंद की स्त्री-दृष्टि पर टिप्पणी करते हैं–"प्रेमचंद की नारी करुणा की मूर्ति नहीं, सामाजिक अन्याय की साक्षी है।" (सिंह पृ. 45) इस मंतव्य से पूर्णतः सहमति प्रकट करते हुए इस सत्य को स्वीकारना आज बेहद जरूरी है कि प्रेमचंद की स्त्रियां अपने युग की व्यावहारिक सीमाओं के भीतर ही खड़ी दिखाई पड़ती हैं और यह स्वाभाविक भी रहा, लेकिन यह बात कि उनकी स्त्रियां सामाजिक न्याय की साक्षी है, यह सहज ही स्वीकार किए जाने का मुद्दा नहीं है बल्कि आज भी हमें यह समझने की जरूरत है कि हमारी स्त्रियां किस हद तक अपने समय को तटस्थतापूर्वक देख पा रही हैं। प्रतिरोध के नाम पर विरोध से बहुत आगे बढ़ती हैं तो प्रतिशोध तक टिक कर रह जाती है। ऐसे में स्त्रीवादी सिद्धांत को हम एक नारा बनते हुए ही देख पाते हैं और यही कारण है कैसे विमर्शों से बहुत कुछ सृजनात्मक पहल नहीं पाती। इस दिशा में प्रेमचंद की स्त्री-दृष्टि हमारे समाज के लिए एक जरूरी दिशानिर्देश है साथ ही रचनाकारों के लिए एक सृजनात्मक स्त्री-दृष्टि। इसी पृष्ठभूमि में हम प्रेमचंद की 'सुमन' और 'धनिया' को भी देख सकते हैं। सुमन का पितृसत्तात्मक संरचना के प्रति मौन प्रतिरोध विचारणीय है, तो साथ ही धनिया का प्रतिरोध खड़ा होते-होते सामाजिक संरचना के सामने कैसे धम्म से जमीन पर गिर पड़ता है। यहां प्रतिरोध को भले ही हम नारा बनते नहीं पाते जैसा कि आज स्त्रीवाद के परिपेक्ष्य में देखा जाता है, लेकिन प्रतिरोध की चेतना को हम समुचित व्यावहारिकता के बीच अवश्य ही बनते हुए देख पाते हैं जिसे परवर्ती स्त्री चरित्र को अवश्य ही संबल प्रदान किया है। प्रेमचंद की स्त्रियाँ प्रत्यक्ष विद्रोह करतीं हैं और उनके आचरण और पीड़ा में एक प्रकार का मौन प्रतिरोध निहित रहता है। यह प्रतिरोध पितृसत्तात्मक व्यवस्था की नैतिकता पर प्रश्नचिह्न लगाता है। सेवासदन की सुमन के चरित्र के माध्यम से प्रेमचंद समाज की दोहरी नैतिकता उजागर करते हैं–"समाज ने जिस नारी को गिराया, उसी को पतित कहकर दंड भी दिया।" (प्रेमचंद 132) किस प्रकार स्त्री के संदर्भ में समाज की भूमिका दोहरी रीढ़विहीन है, यह उजागर हो रहा।

स्वतंत्रता के बाद : चेतना का विस्तार –

स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी कथा साहित्य में मध्यवर्गीय स्त्री की चेतना में उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देता है। शिक्षा, शहरीकरण और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रभाव से स्त्री अब केवल सहनशील इकाई नहीं रह जाती, बल्कि अपने अस्तित्व को पहचानने लगती है।

यशपाल के साहित्य में स्त्री केवल निजी जीवन की पीड़िता नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन की सजग इकाई के रूप में उपस्थित होती है। उनकी कृतियों में स्त्री-चरित्र परंपरागत नैतिकताओं, पितृसत्तात्मक मूल्यों और मध्यवर्गीय संकीर्णताओं से टकराते हुए अपने अस्तित्व और अधिकारों की खोज करते दिखाई देते हैं। उपन्यास 'दिव्या' की नायिका इसी चेतना की प्रतिनिधि है। वह परिस्थितियों के दबाव में समर्पण स्वीकार नहीं करती, बल्कि अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने का साहस दिखाती है। उसका कथन "मैं किसी की दया पर जीवन नहीं जी सकती" (यशपाल 214) केवल व्यक्तिगत स्वाभिमान की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि उस सामाजिक संरचना के विरुद्ध प्रतिरोध है जिसमें स्त्री को आश्रित और करुणा का पात्र बना दिया जाता है। दिव्या का संघर्ष इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वह मध्यवर्गीय स्त्री की उस स्थिति को उजागर करता है जहाँ आर्थिक, नैतिक और सामाजिक बंधन स्त्री की स्वतंत्रता को सीमित करते हैं। यशपाल यहाँ स्त्री की समस्या को निजी दुख तक सीमित न रखकर उसे व्यापक सामाजिक संदर्भ प्रदान करते हैं। दिव्या का आत्मनिर्णय सामाजिक चेतना से जुड़कर सामूहिक संघर्ष का रूप ले लेता है। इस प्रकार यशपाल की स्त्री निष्क्रिय सहनशीलता की प्रतीक न होकर परिवर्तन की आकांक्षी बनती है। डॉ. शिवकुमार मिश्र का यह कथन कि "यशपाल की स्त्री सामाजिक परिवर्तन की सहभागी है, मात्र भोग्या नहीं" (मिश्र 176) यशपाल की स्त्री-दृष्टि को सटीक रूप में रेखांकित करता है। स्पष्ट है कि यशपाल के साहित्य में स्त्री अपनी अस्मिता, स्वाधीनता और सामाजिक भूमिका के प्रति सजग होकर उभरती है और यही उनकी स्त्री-चेतना की आधुनिकता का मूल आधार है।

नई कहानी आंदोलन : आंतरिक संकट का चित्रण –

नई कहानी आंदोलन ने मध्यवर्गीय जीवन की भीतरी जटिलताओं को केंद्र में रखा। इस दौर की कहानियों में स्त्री की आंतरिक पीड़ा, अकेलापन और असंतोष प्रमुख विषय बने। मोहन राकेश के नाटक 'आधे-अधूरे' की सविता आधुनिक मध्यवर्गीय स्त्री की विडंबना का प्रतीक है। वह पति, परिवार और सामाजिक अपेक्षाओं से असंतुष्ट है, किंतु सामाजिक संरचना उसे विकल्पहीन बना देती है। वह कहती है — "मुझे पूरा आदमी चाहिए था, आधा नहीं।"(राकेश 59) सविता की

विडंबना आधुनिक मध्यवर्गीय स्त्री की पहचान है। नामवर सिंह नई कहानी की स्त्री पर कहते हैं – "नई कहानी की नारी बाहर से नहीं, भीतर से टूटती है।" सविता की टूटन और उस जैसी न जाने कितनी ही मध्यवर्गीय स्त्री की टूटन भीतर की टूटन है, जो उसे खोखला बना रही। (सिंह 71)

राजेंद्र यादव की कहानियों में स्त्री-स्वतंत्रता स्पष्ट है। राजेंद्र यादव की कहानियों में स्त्री देह, कामना और स्वतंत्रता के प्रश्नों के साथ उपस्थित होती है। 'उखड़े हुए लोग' में स्पष्ट कहलवाते हैं – "स्त्री की देह पर पहला अधिकार स्वयं स्त्री का है।" (यादव 103) उनकी स्त्रियाँ मध्यवर्गीय नैतिकता की सीमाओं को चुनौती देती हैं और आत्मनिर्णय की आकांक्षा व्यक्त करती हैं। आकांक्षा के साथ नई नैतिकता का आह्वान करती है। यह नैतिकता कहां तक समय समाज की दशा और दिशा को निर्धारित कर पाएगी, इस दिशा में हम बाद के कथा साहित्य में निर्मित स्त्री चरित्र को देखकर आश्वस्त हो पाते हैं।

स्त्री लेखन : आत्मकथात्मक प्रामाणिकता –

स्त्री लेखिकाओं के लेखन में मध्यवर्गीय स्त्री का अनुभव अधिक आत्मीय और प्रामाणिक रूप में उभरता है। कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी' पारंपरिक मर्यादाओं को तोड़ते हुए स्त्री देह और इच्छा की स्वायत्तता को रेखांकित करती है। मित्रो कहती है–"मैं अपने सुख की माँग करती हूँ।" (सोबती 28) मित्रो का यह कथन स्त्री-स्वायत्तता की उद्घोषणा है। अर्चना वर्मा लिखती हैं– "सोबती की नारी देह की नहीं, निर्णय की स्वामिनी है।" (वर्मा 94) कृष्णा सोबती की कहानियों और उपन्यासों में स्त्री अपनी देह, भाषा और निर्णयों पर अधिकार जताती है। 'मित्रो मरजानी' की मित्रो पारंपरिक मध्यवर्गीय मर्यादाओं को तोड़ती हुई एक सशक्त स्त्री छवि प्रस्तुत करती है।

मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' में स्त्री प्रेम, विवाह और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच मानसिक द्वंद्व से गुजरती है।'यही सच है' की नायिका की मन: स्थिति की अभिव्यक्ति होती है –"हर निर्णय के साथ कोई न कोई अपराधबोध जुड़ा था।" (भंडारी 64) मैनेजर पांडेय टिप्पणी लिखते हैं–"मन्नू भंडारी की स्त्री नैतिकता और भावनाओं के बीच फँसी हुई है।" (पांडेय 138) मैनेजर पांडेय की यह टिप्पणी अंतिम सत्य नहीं है क्योंकि 'यही सच है' कहानी को ही लें तो नायिका भावनात्मक नैतिकता से आगे बढ़कर सत्य को स्वीकार कर लेती है। इतना ही नहीं कहानी 'ऊंचाई' में विवाह के पहले के प्रेमी के साथ अंग-संग करने के बावजूद अपने पति के सामने तनिक भी भावनात्मक नैतिकता से काम नहीं लेती, बल्कि यह घोषणा तक कर जाती है कि प्रेमी उस ऊंचाई को प्राप्त नहीं कर पाएगा जिस ऊंचाई को वह अपने पति को उपलब्ध कराती है। ऐसे में नैतिकता और भावनाओं में फंसी हुई उनका स्त्री चरित्र नहीं दिखता।

उषा प्रियंवदा की रचनाओं में कामकाजी मध्यवर्गीय स्त्री की आत्मनिर्भरता के बावजूद भावनात्मक अकेलापन स्पष्ट रूप से उभरता है। पहचान का संकट उभरकर आता है। उनकी स्त्रियाँ शिक्षित हैं, आत्मनिर्भर हैं, परंतु भावनात्मक स्तर पर असुरक्षित हैं। 'पचपन खंभे लाल दीवारें' में कामकाजी स्त्री भावनात्मक असुरक्षा से ग्रस्त है - "स्वतंत्रता के बावजूद उसका अकेलापन कम नहीं हुआ था।" (प्रियंवदा 119) डॉ. इंद्रनाथ मदान लिखते हैं–"उषा प्रियंवदा की नारी आधुनिक होते हुए भी भावनात्मक रूप से अपूर्ण है।" (मदान 201) आधुनिक होते हुए भी भावनात्मक रूप से अपूर्ण बताना कहीं ना कहीं पाठकों के भीतर पूर्णता को प्राप्त करने के लिए जरूरी प्रतिरोध को जन्म देता है। इस नाते वह आक्रामकता नहीं दिखती है उषा प्रियंवदा के स्त्री पात्र में, जो आगे चलकर हम देख पाते हैं। यहां भी यह सत्य हमें बार-बार विचार करने को मजबूर करता है कि प्रतिरोध मुखर होने पर अवश्य ही हमें आकर्षित करता है लेकिन पाठकों को मुखर बनाने की दिशा में जो प्रतिरोध मौन रहकर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, उसी के साथ स्त्री जीवन प्रतिरोध की लंबी यात्रा तय कर पता है।

समकालीन हिंदी कथा साहित्य : स्त्री लेखन –

समकालीन हिंदी कथा साहित्य में मध्यवर्गीय स्त्री का स्वर अधिक स्पष्ट, मुखर और प्रतिरोधी हुआ है। वैश्वीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति ने स्त्री जीवन में नए अवसरों के साथ-साथ असुरक्षा, मानसिक दबाव और संबंधों की जटिलताओं को भी जन्म दिया है। समकालीन कहानियों में घरेलू हिंसा, वैवाहिक तनाव, करियर की चुनौतियाँ और मानसिक स्वास्थ्य जैसे प्रश्न खुलकर सामने आते हैं। इस दौर की स्त्री अब केवल सहनशील पीड़िता नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की सजग और सक्रिय सहभागी के रूप में प्रस्तुत होती है। यह स्त्री अब चुप नहीं रहती, बल्कि सवाल करती है

और अपने लिए नए रास्ते तलाशती है। वास्तव में सवालों की पितृसत्तात्मक संरचना को तोड़ती हुई स्वयं में एक वजनदार सवाल बनकर उभरती है जिसके जवाब में प्रतिरोधी चेतना का आगाज दिखता है।

गीताश्री की कहानियों में मध्यवर्गीय स्त्री का आत्मसंघर्ष और आत्मबोध विशेष रूप से उभरकर सामने आता है। उनकी स्त्री सामाजिक अपेक्षाओं और पितृसत्तात्मक दबावों के बीच अपनी पहचान को लेकर निरंतर जूझती है। मध्यवर्गीय स्त्री सम्मान, स्वीकृति और आत्मनिर्णय के लिए लगातार संघर्षरत रहती है। 'ताप', 'गोरिल्ला प्यार' जैसी कहानियों में स्त्री का प्रतिरोध केवल बाहरी सत्ता के विरुद्ध नहीं, बल्कि स्त्री की आत्मचेतना से उपजा हुआ है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियों में समकालीन, शिक्षित और नौकरीपेशा मध्यवर्गीय स्त्री का स्वर अधिक आत्मविश्वास के साथ सामने आता है। वैश्वीकरण के प्रभाव से उत्पन्न नए जीवन-मूल्यों के संदर्भ में उनकी स्त्री पारंपरिक वैवाहिक निर्भरता को अस्वीकार करती है। कहानी "शिगाफ" में स्त्री का कथन–"मैं किसी की परछाईं बनकर जीने के लिए पैदा नहीं हुई, मेरी अपनी धूप है" (कुलश्रेष्ठ 112) –उस आत्मनिर्भर चेतना का प्रतीक है, जो स्त्री को स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करती है। यह स्त्री अपने जीवन और संबंधों को नए सिरे से परिभाषित करना चाहती है।

इस प्रकार समकालीन हिंदी कथा साहित्य मध्यवर्गीय स्त्री को एक ऐसी चेतन सत्ता के रूप में प्रस्तुत करती हैं, जो प्रश्न करती है, प्रतिरोध करती है और अपने लिए नए जीवन-पथ का निर्माण करती है। यह स्त्री निजी अनुभवों को सामाजिक विमर्श में रूपांतरित कर परिवर्तन की प्रक्रिया को गति देती है। मध्यवर्गीय स्त्री का संघर्ष बहुस्तरीय है। वह पितृसत्तात्मक संरचना से संघर्ष करते हुए अपनी आंतरिक असुरक्षाओं और भय से भी जूझती है। उसका प्रतिरोध कभी मौन होता है, कभी मुखर, किंतु यह प्रतिरोध साहित्य में एक महत्वपूर्ण वैचारिक हस्तक्षेप बनकर उभरता है।

निष्कर्ष –

हिंदी कथा साहित्य में मध्यवर्गीय स्त्री की यात्रा सहनशीलता से आत्मचेतना और प्रतिरोध तक की यात्रा है। प्रारंभिक कथा साहित्य में वह परंपराओं में जकड़ी हुई दिखाई देती है, जबकि समकालीन रचनाओं में वह अपने अस्तित्व और अधिकारों के प्रति सजग है। मध्यवर्गीय स्त्री हिंदी कथा साहित्य की वह धुरी है, जिसके माध्यम से समाज के नैतिक, सांस्कृतिक और वैचारिक अंतर्विरोधों को समझा जा सकता है। मध्यवर्गीय स्त्री 'स्त्री समाज' के लिए समग्रता में दिशा-निर्देश का काम करती है। अब तक कथा साहित्य में स्त्रियां कथा को बढ़ाने के मद्देनजर महज पात्र के रूप में सक्रिय दिखाई पड़ती रहीं, लेकिन समकालीन परिदृश्य में स्त्रियां पात्र से आगे बढ़कर कर्ता के रूप में सिर्फ कथा को आगे बढ़ाती ही नहीं है, बल्कि स्वयं में एक जरूरी कथा रच रही होती हैं। इसे ही समकालीन स्त्री-बोध के रूप में देखा जाना जरूरी है। सहज ही स्वीकार्य है कि हिंदी कथा साहित्य में मध्यवर्गीय स्त्री केवल सामाजिक यथार्थ की प्रतिछाया नहीं, बल्कि परिवर्तन की संभावनाओं से भरा एक सार्थक एवं सशक्त प्रतिरोधी स्वर है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, रामविलास. भारतीय समाज और साहित्य. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन, 2014, पृ. 112.
2. प्रेमचंद. निर्मला. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2016, पृ. 87.
3. सिंह, नामवर. कहानी: नई कहानी. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन, 2002, पृ. 45,
4. प्रेमचंद. सेवासदन. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन, 2015, पृ. 132.
5. यशपाल. दिव्या. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन, 2013, पृ. 214.
6. मिश्र, शिवकुमार. यशपाल का साहित्य. इलाहाबाद. लोकभारती प्रकाशन, 2011, पृ. 176.
7. राकेश, मोहन. आधे-अधूरे. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन, 2010, पृ. 59.
8. सिंह, नामवर. कहानी : नई कहानी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994. पृ.71
9. यादव, राजेंद्र. उखड़े हुए लोग. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ. 103.
10. सोबती, कृष्णा. मित्रो मरजानी. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन, 2012, पृ. 28.
11. वर्मा, अर्चना. कृष्णा सोबती का रचना संसार. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2010, पृ. 94.
12. भंडारी, मन्नू. यही सच है. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन, 2008, पृ. 64.
13. पांडेय, मैनेजर. हिंदी कथा साहित्य और स्त्री विमर्श. नई दिल्ली. वाणी प्रकाशन, 2014, पृ. 138.
14. प्रियंवदा, उषा. पचपन खंभे लाल दीवारें. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन, 2011, पृ. 119.
15. मदान, इंद्रनाथ. आधुनिक हिंदी उपन्यास में नारी. नई दिल्ली. साहित्य अकादमी, 2007, पृ. 201.
16. कुलश्रेष्ठ, मनीषा. शिगाफ. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन, 2019, पृ. 112.